भाषा की उत्पत्ति-

 भाषाविज्ञान भाषा का विज्ञान है, अतः भाषाविज्ञान पर कुछ जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भाषा क्या है ? इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? भाषा की उत्पत्ति की समस्या की ओर बहुत पहले से लोगों का ध्यान जाता रहा है, किन्तु इसका कोई संतोषजनक और सर्वमान्य उत्तर खोजना अत्यन्त दुष्कर है। वस्तुतः भाषा की उत्पत्ति इतने प्राचीन काल में हुई कि उसके बारे में व्यवस्थित रूप से विचार करने के लिए हमारे पास आज कोई आधार नहीं है। यों इस संबंध में अब तक अनेक मत व्यक्त किए गए हैं, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं -

 दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त -

 प्राचीनकाल में लोगों का सभी चीजों के बारे में यह विचार रहा है कि वह ईश्वर प्रदत्त या ईश्वर की बनाई हुई है। इसी प्रकार भाषा को भी लोग ईश्वर-निर्मित मानते रहे हैं। ऋग्वेद में आता है - देवी वाचमजनयन्त देवाः तां विश्वरूपा पशवो वदन्ति (देवों ने वाणी को उत्पन्न किया, उसे सभी प्राणी बोलते हैं)। अन्यत्र भी कहा गया है - वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा (स्वयंभू ने वाणी की सृष्टि की)। इसी धारणा के आधार पर संस्कृत को देववाणी, देवभाषा आदि कहा गया है। बाइबिल में आता है कि ईश्वर हिबू्र जाति के लोगों के साथ बातचीत किया करता था। मिस्र के लोग अपनी भाषा को ’न्द्वन्त्र‘ (देवभाषा) कहा करते थे। बौद्ध मागधी को मूल भाषा मानते रहे हैं - सा मागधी मूलभाषा नरा यायादिकाधिका। ब्राह्मानो च स्सु तालया संबुद्धा चापि भासरे। उनके अनुसार कल्प के आरम्भ में मनुष्य के मुँह से यही भाषा निकली थी। इसी प्रकार जैनियों के अनुसार अर्धमागधी आदि-भाषा है। वे मानते हैं कि जब महावीर स्वामी इस भाषा में अपने उपदेश देते थे तो देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य सभी समझ लेते थे। अरब वालों का अरबी के बारे में कुछ ऐसा ही विचार रहा है। मुसलमान कुरान को खुदा का कलाम मानते हैं। इस प्रकार अनेक देशों में ऐसी धारणाएँ रही हैं। जब लोक भाषा के बारे में कुछ अधिक सोचने-विचारने लगे और देखा कि मूल भाषा कौन-सी है जो ईश्वर-निर्मित है। इसके लिए मिस्र के राजा सेमेटिकस ने दो बच्चों को जन्म के बाद ही समाज से अलग रखा था। सोचा यह था कि जो मूल या ईश्वर-प्राप्त भाषा होगी, उसे बच्चे सहज ही बोलेंगे। सीखने-सिखाने की आवश्यकता न होगी। बड़े होने पर देखा गया कि बच्चे केवल एक शब्द ’बेकोस‘ जानते थे। यह फ्रीजियन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ’रोटी‘ होता है। फ्रीजियन नौकर ने गलती से बच्चों के सामने कभी-कभार यह शब्द उच्चरित कर दिया था और उसी से बच्चों ने सीख लिया था। फ्रेडरिक द्वितीय, जेम्स चतुर्थ तथा अकबर ने भी इस प्रकार के प्रयोग किए थे। अकबर का प्रयोग बहुत सफल रहा और यह देखा गया कि वे बच्चे कोई भी भाषा नहीं जानते थे, एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे। इससे स्पष्ट है कि बच्चा माँ के पेट से कोई भाषा सीखकर नहीं आता, और न ही भाषा ईश्वर-निर्मित है। दैवी उत्पत्ति के विरुद्ध कई बातें कहीं जा सकती हैं: (1) भाषा यदि ईश्वर-निर्मित होती तो पूरे संसार में मूलतः एक ही भाषा होती। किन्तु भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण से पता चलता है कि सभी भाषाएँ एक भाषा से नहीं निकली हैं। (2) भाषा ईश्वर-निर्मित होती तो कदाचित प्रारम्भ से ही पूर्ण विकसित होती, किन्तु भाषाओं का इतिहास इसके विरोधी प्रमाण पेश करता है। (3) आज के वैज्ञानिक युग में किसी भी वस्तु को ईश्वर-निर्मित नहीं माना जा सकता, अतः भाषा के बारे में भी ऐसी धारणा अवैज्ञानिक ही मानी जाएगी।

 धातु सिद्धान्त -

 इस सिद्धान्त को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई लोगों ने कई रूपों में रखा है। प्राचीन काल में भारत में कुछ लोग इस सिद्धान्त के समर्थक रहे थे। शाकटायन यह मानते थे कि सभी शब्द मूलतः धातु से निर्मित हैं। पश्चिम में इस मत के प्राचीनतम संकेत प्लेटो में मिलते हैं। आधुनिक काल में जर्मन प्रोफेसर हेस ने अपने ढंग से धातु-सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप दिया। उनके अनुसार संसार की हर वस्तु की अपनी अलग ध्वनि होती है। यदि हम एक डंडे से काठ, ईंट, लोहा, टिन आदि पर चोट करें तो सभी की ध्वनियाँ अलग-अलग होंगी। हेस के अनुसार प्रारम्भ में मनुष्य में एक ऐसी सहजात शक्ति थी कि जिस भी चीज के संपर्क में वह आता था, उसके मुँह से एक प्रकार की ध्वनि निकल जाती थी। ये ध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ ही धातु थीं और इन्हीं के आधार पर शब्द बने जिनसे भाषा बनी। बाद में धीरे-धीरे मनुष्य की यह सहज शक्ति लुप्त हो गई। हेस ने यह भी कहा कि इन धातुओं की ध्वनि तथा धातुओं से व्यक्त भाव आदि में एक रहस्यात्मक संबंध था। इसी सिद्धान्त को डिंगडांगवाद भी कहा गया। ’डिंगडांग‘ का अर्थ है ’टन-टन‘। ध्वनि पर आधारित धातुओं के कारण ’डिंगडांगवाद‘ नाम पड़ा है। धातु-सिद्धान्त के विरुद्ध निम्नांकित बातें की जा सकती हैं: (1) हेस द्वारा कही गई ये बातें पूर्णतः काल्पनिक हैं। उनके पास ऐसी कल्पना के लिए कोई आधार नहीं है। (2) विश्व में कुछ ही परिवार की भाषाओं में धातुएँ मिलती हैं। ऐसी भाषाएँ बहुत सारी हैं जिनमें धातुएँ हैं ही नहीं, अतः उन पर तो यह सिद्धान्त बिल्कुल नहीं लागू होता। (3) भाषा केवल धातु से नहीं बन सकती। धातुओं से शब्द बनाने के लिए उपसर्ग, प्रत्यय या अन्य प्रकार के संबंध तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। इस मत में इस बात का उत्तर नहीं दिया गया है कि अन्य तत्त्व कहाँ से आए या इनके बिना भाषा कैसे बनी।

 निर्णय सिद्धान्त-

 इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों ने एकत्र होकर वस्तुओं, क्रियाओं, विचारों आदि के लिए शब्दों का निर्णय किया और फिर उन्हीं शब्दों से भाषा बनी। ध्यान देने से पता चलता है यह सिद्धान्त भी अन्य सिद्धान्तों की भाँति निरर्थक है। इसके विपक्ष में भी कई बातें कही जा सकती हैं:- (1) पहली बात तो यह है कि यदि कोई भाषा नहीं थी तो आरम्भ में लोग निर्णय करने के लिए कैसे एकत्र हुए ? (2) एकत्र हो भी गए तो भाषा के अभाव में कैसे विचार-विमर्श करके शब्दों का निर्णय किया ? (3) यदि उनके पास कोई ऐसी भाषा थी, जिससे एकत्र हो सकें तथा विचार-विनिमय कर सके तो वह कहाँ से आई, उसकी उत्पत्ति कैसे हुए ? (4) यदि इस सिद्धान्त को मानें तो पशुओं को भी एक होकर अपनी कोई भाषा बना लेनी चाहिए। (5) इस मत के पोषक कैसे इस बात का अनुमान लगा सके कि निर्णय के आधार पर भाषा बनी, यह बात बहुत स्पष्ट नहीं है।

 अनुकरण सिद्धान्त -

 बहुत से लोगों का मत है कि भाषा में शब्द मूलतः विभिन्न प्रकार के अनुकरण के आधार पर बने हैं और उन्हीं से भाषा का विकास हुआ। उदाहरण के लिए संस्कृत के पंडितों के अनुसार पत्ता के गिरने से ’पत‘ ध्वनि हुई, उसके अनुकरण के आधार पर ’पत्‘ धातु बनी, जिसका अर्थ है ’गिरना‘। उसी से ’पत्र‘ आदि शब्द बने। ’काक‘, ’कोकिल‘ आदि पक्षियों के नाम ध्वनियों के अनुकरण पर आधारित माने गए हैं। यास्क कहते हैं: ’काकइतिशब्दानुकृतिः तदिद शकुनिषु बहुलम्।‘ म्याऊ (बिल्ली), घुग्घू, फटफटिया (मोटर साइकिल), पों-पों (मोटर), भोंपू, हिनहिनाना, खटखटाना, फटफटाना आदि शब्द भी इसी प्रकार ध्वनियों के अनुकरण बन बने हैं। इस सिद्धान्त को अंग्रेजी में ठवू.ठवू ज्ीमवतल कहते हैं। यह नाम मैक्समूलर ने मजाक में दिया था। बाउ-बाउ अंग्रेजी में कुत्ते की बोली को कहते हैं। अनुकरण सिद्धान्त के पक्ष तथा विपक्ष में अनेक बातें कही जा सकती हैं। वस्तुतः यह सिद्धान्त उपर्युक्त सिद्धान्तों की भाँति पूर्णतः त्याज्य नहीं है। संसार की अनेकानेक भाषाओं में ऐसे कुछ शब्द हैं जो निश्चित रूप से ध्वनि के अनुकरण पर आधारित हैं। हिन्दी में तड़-तड़, भड़-भड़, सन-सन, साँय-साँय, चट-चट ऐसे ही शब्द हैं। इस प्रकार कुछ थोड़े से शब्दों की उत्पत्ति का उत्तर निश्चित रूप से इस मत से मिल जाता है। किन्तु इसके विरुद्ध दो बातें अवश्य कही जा सकती हैं। एक तो यह कि विश्व में कुछ ऐसी भी भाषाएँ हैं जिनमें इस प्रकार के अनुकरणात्मक शब्द नहीं हैं। दूसरे किसी भी भाषा में अनुकरणात्मक शब्दों की संख्या अधिक-से-अधिक कुछ सौ हो सकती है। इसका आशय यह हुआ कि शेष निन्यानवे प्रतिशत से भी अधिक शब्दों से इस सिद्धान्त का कोई भी संबंध नहीं है। इस प्रकार आंशिक रूप से स्वीकार्य होने पर भी यह सिद्धांत पूर्णतः सत्य नहीं है।

 मनोभावाभिव्यक्ति सिद्धांत -

 इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति मनुष्य के मन के भावों को सहज रूप से अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति से हुई है। अर्थात् मूलतः मनुष्य विचार प्रधान न होकर भाव-प्रधान था। दुःख-सुख आदि के भावावेश में उसके मुँह से हाय, वाह, ओह, छिः, आह, पूह (इसी आधार पर इसे मज़ाक में मैक्समूलर ने च्ववी.च्ववी ज्ीमवतल कहा था) आदि विस्मयादिबोधक शब्द निकल जाया करते थे। इन्हीं शब्दों से भाषा का विकास हुआ। इस सिद्धांत के मान्य होने में भी बहुत कठिनाइयाँ हैं। (क) पहली बात तो यह है कि ऐसे शब्द भाषा में बहुत ही कम हैं। कई लाख शब्दों का प्रयोग करने वाली भाषा में भी इस श्रेणी के शब्द दस-बीस से अधिक न होंगे। (ख) दूसरे विभिन्न भाषाओं में ऐसे शब्दों के एक रूप नहीं हैं। संसार-भर की बिल्लियाँ सुख या दुःख में प्रायः एक प्रकार के शब्द करती हैं किन्तु दुनिया-भर के मनुष्य एक ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं करते। इससे पता चलता है कि ये शब्द उस प्रकार सहज नहीं हैं, जैसे कि इस मत में कहा गया है। कदाचित अन्य शब्दों की तरह इनका भी विकास हुआ है और ये यादृच्छिक हैं। (ग) ऐसे शब्द भाषा के मुख्य अंग नहीं हैं। वस्तुतः इनका प्रयोग वहीं होता है जहाँ सामान्य भाषा अपर्याप्त होती है। अन्य शब्दों की तरह ये शब्द नहीं हैं बल्कि यदि माना जाए तो ये पूरे वाक्य हैं। इस तरह यह मत भी भाषा की उत्पत्ति के लिए अपर्याप्त है। अधिक-से-अधिक कुछ थोड़े शब्दों की उत्पत्ति का संबंध ही इससे जोड़ा जा सकता है।

 यो-हे-हो-सिद्धान्त -

 इस मत के जन्मदाता न्वायर हैं। इस मत के अनुसार परिश्रम का काम करते समय साँस के तेजी से बाहर-भीतर आने-जाने और साथ ही स्वरतंत्रियों के विभिन्न रूपों में कंपित होने तथा तद्नुकूल ध्वनियाँ उच्चरित होने से काम करने वाले को राहत मिलती है। इसीलिए कठिन परिश्रम करते समय मल्लाह यो-हे-हो, धोबी छियो-छियो या सड़क कूटने वाले मजदूर ’हूँ‘, ’हैं‘ आदि कहते हैं। न्वायर इन्हीं शब्दों में ध्वनियों से भाषा की उत्पत्ति मानते हैं। विचार करने पर पता चलता है कि यह मत और मतों से भी निरर्थक है। इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं -(1) पहली बात तो यह कि ये शब्द निरर्थक होते हैं, अतः निरर्थक शब्दों या ध्वनियों से सार्थक भाषा की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। (2) कुछ अन्य मतों की तरह ही इसमें भी कल्पना की उड़ान मात्र है। इसके लिए कोई ठोस आधार नहीं है। इस मत को श्रम-परिहरणमूलकतावाद भी कहते हैं।

 इंगित सिद्धान्त -

 इस सिद्धान्त की ओर संकेत तो डार्विन आदि कई विद्वान समय-समय पर करते रहे हैं, किन्तु इसे अन्तिम रूप से व्यवस्थित सिद्धान्त देने का श्रेय आसलैंडिक भाषा के विद्वान अलेक्जै़ंडर जोहानसन को है। इन्होंने कई परिवार की भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भाषा के विकास की चार सीढ़ियाँ मानीं। पहली सीढ़ी भाव-व्यंजक ध्वनियों की रही होगी, जब मनुष्य बन्दरों आदि की तरह भय, क्रोध, दुःख, खुशी के भावों को इन ध्वनियों द्वारा व्यक्त करता रहा होगा। दूसरी श्रेणी अनुकरणात्मक शब्दों की रही होगी, जब विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के अनुकरण के आधार पर शब्द बने होंगे। तीसरी सीढ़ी भाव-संकेतों या इंगितों की है। इनका भी आधार अनुकरण है, किन्तु यह अनुकरण बाहरी चीजों का न होकर अपने अंगों का (उच्चारण-अवयवों से काम करने वाले अंगों, मुख्यतः हाथ का अनुकरण) है। जोहानसन भाषा के विकास में इसी को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस तीसरी स्थिति में स्थूल के लिए शब्द बने होंगे। चैथे चरण में धीरे-धीरे सूक्ष्म के लिए शब्द बने होंगे। इस मत में उल्लिखित प्रथम दो चरण अपने स्थान पर ठीक ज्ञात होते हैं किन्तु शेष दो स्पष्ट नहीं है। (1) मुख्यतः उच्चारण अवयवों द्वारा हाथ आदि के अनुकरण से कैसे स्थूल के लिए शब्द बने यह स्पष्ट नहीं है। (ख) इसी प्रकार सूक्ष्म के लिए शब्दों के बनने पर विकसित होने की बात भी बहुत स्पष्ट नहीं है।

 सम्पर्क सिद्धान्त -

 मनोवैज्ञानिक रेवेज़ इस मत के प्रतिपादक हैं। उनके अनुसार मनुष्यों में आपसी सम्पर्क की सहजात प्रवृत्ति है। इसी कारण समाज का निर्माण हुआ है। समाज में मनुष्य आपस में सम्पर्क स्पर्श तथा संकेत आदि से करता रहा होगा तथा साथ में मुँह से ध्वनियाँ उच्चरित होती रही होंगी। सम्पर्क की आवश्यकता में वृद्धि के साथ-साथ स्पष्टता के लिए ध्वनियों का प्रयोग बढ़ता गया होगा और सहज उच्चरित ध्वनियों के अतिरिक्त अन्य ध्वनियाँ भी उच्चरित होने लगी होेंगी। सम्पर्क प्रारंभ में भावों के स्तर पर रहा होगा, फिर वह विचार के स्तर पर होने लगा होगा। इस प्रकार धीरे-धीरे भाषा का विकास हुआ होगा। इस मत में सम्पर्क से भाषा के विकास की बात तो उचित प्रतीत होती है, किन्तु भाषा की उत्पत्ति के प्रसंग में इतनी सामान्य बात से कदाचित संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता।

 समन्वित रूप -

 प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वीट ने भी इस प्रश्न पर विचार किया था। उनके अनुसार भाषा प्रारम्भिक रूप में ’भाव संकेत‘ या इंगित (ळनमेजनतम) और ध्वनि-समवाय (ैवनदक हतवनच) दोनों पर आधारित थी। बाद में ध्वनि-समवाय के आधार पर शब्दों का विकास हुआ। स्वीट के अनुसार प्रारंभिक शब्द-समूह तीन प्रकार के शब्दों का था: अनुकरणात्मक, भावावेशव्यंजक, प्रतीकात्मक। प्रतीकात्मक वे शब्द थे जिनका संयोग से किसी अत्यन्त सामान्य और थोड़े से संबंध से विशेष अर्थ मान लिया गया। जैसे ओष्ठ्य ध्वनियों वाले शब्द ’मामा‘ या ’माँ‘ या ’पापा‘ का बाप। बाद में भाषा मूलतः प्रतीकात्मक शब्दों के आधार पर ही विकसित होते-होते आज की स्थिति में पहुँची।

 निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आज तक जितने भी सिद्धान्त सामने आए हैं या इस क्षेत्र में जो कुछ भी काम हुआ है उसके आधार पर इतना ही कहना संभव है कि भाषा की उत्पत्ति भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से हुई है और इसमें इंगित-सिद्धान्त तथा सम्पर्क सिद्धान्त में व्यक्त मूलभूत बातों से सहायता मिली है। बाद में मनुष्य में विकास के साथ-साथ भाषा भी धीरे-धीरे विकसित होते-होते आज की स्थिति में आई है।